श्रीमद्भागवतम्

स्कन्ध 3

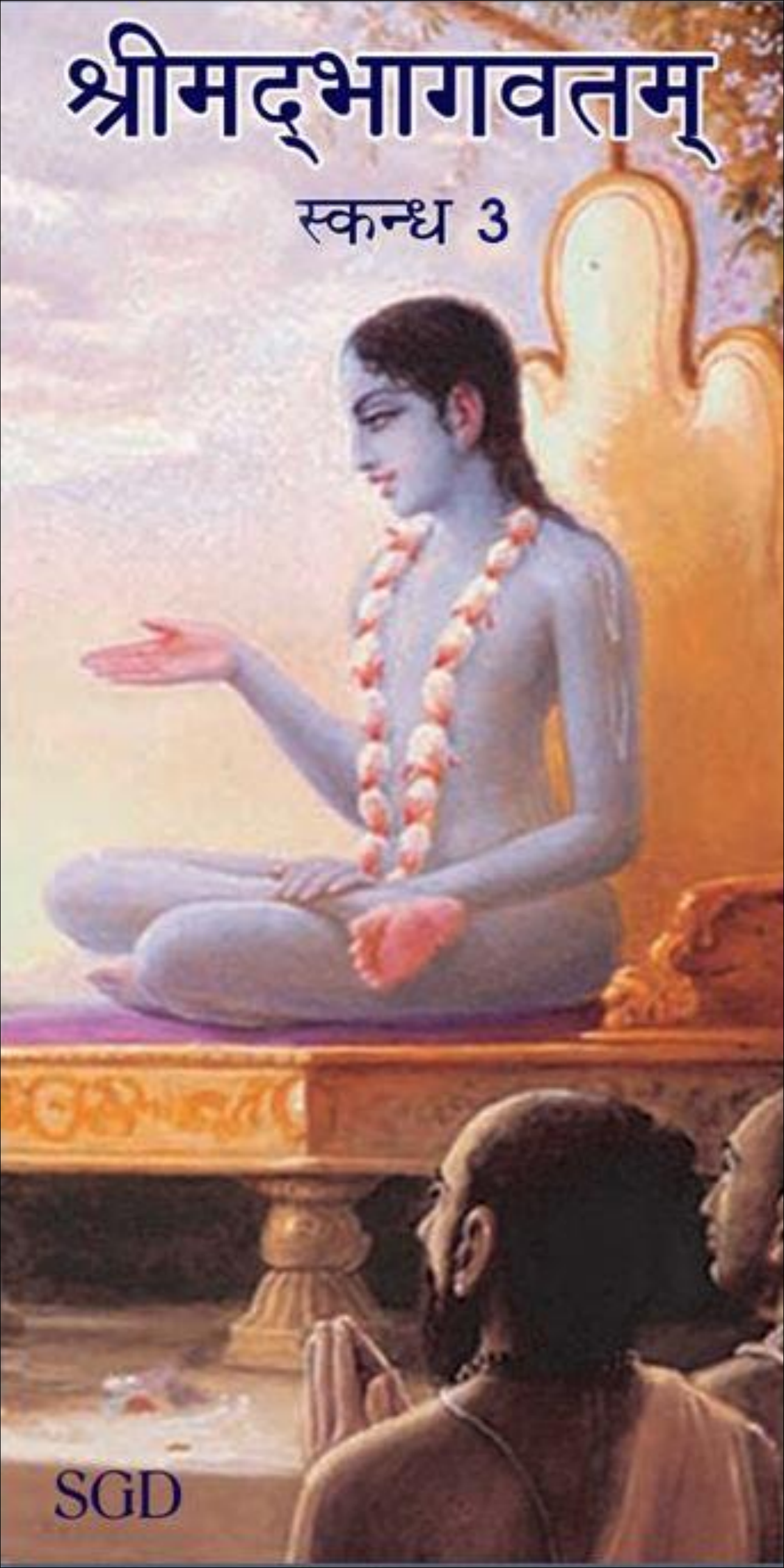

SGD

श्रीमद् भागवत पुराण

अध्याय 26

प्रकृति के मूलभूत सिद्धान्त

श्रीलगुरुदेव

श्लोक 1: भगवान् कपिल ने आगे कहा : हे माता, अब मैं तुमसे परम सत्य की विभिन्न कोटियों का वर्णन करूँगा जिनके जान लेने से कोई भी पुरुष प्रकृति के गुणों के प्रभाव से मुक्त हो सकता है।

श्लोक 2: आत्म-साक्षात्कार की चरम सिद्धि ज्ञान है। मैं तुमको वह ज्ञान बतलाऊँगा जिससे भौतिक

संसार के प्रति आसक्ति की ग्रन्थियाँ कट जाती हैं।

श्लोक 3: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् परमात्मा हैं और उनका आदि नहीं है। वे प्रकृति के गुणों से परे और इस भौतिक जगत के अस्तित्व के परे हैं। वे सर्वत्र दिखाई पड़ने वाले हैं, क्योंकि वे स्वयं प्रकाशवान हैं और उनकी स्वयं प्रकाशवान कान्ति से सम्पूर्ण सृष्टि का पालन होता है।

श्लोक 4: उस महान् से महानतम् श्रीभगवान् ने सूक्ष्म भौतिक शक्ति को अपनी लीला के रूप में

स्वीकार किया जो त्रिगुणमयी है और विष्णु से सम्बन्धित है।

श्लोक 5: अपने तीन गुणों से अनेक प्रकारों में विभक्त यह भौतिक प्रकृति जीवों के स्वरूपों को उत्पन्न करती है और इसे देखकर सारे जीव माया के ज्ञान-आच्छादक गुण से मोहग्रस्त हो जाते हैं।

श्लोक 6: अपनी विस्मृति के कारण दिव्य जीवात्मा प्रकृति के प्रभाव को अपना कर्मक्षेत्र मान बैठता है और इस प्रकार प्रेरित होकर

त्रुटिवश अपने को कर्मों का कर्ता मानता है।

श्लोक 7: भौतिक चेतना ही मनुष्य के बद्धजीवन का कारण है, जिसमें परिस्थितियाँ जीव पर हाबी हो जाती हैं। यद्यपि आत्मा कुछ भी नहीं करता और ऐसे कर्मों से परे रहता है, किन्तु इस प्रकार वह बद्धजीवन से प्रभावित होता है।

श्लोक 8: बद्धजीव के शरीर, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के अधिष्ठता देवों का कारण भौतिक प्रकृति है। इसे विद्वान मनुष्य जानते हैं। स्वभाव से

दिव्य, ऐसे आत्मा के सुख तथा दुख जैसे अनुभव स्वयं आत्मा द्वारा उत्पन्न होते हैं।

श्लोक 9: देवहूति ने कहा : हे भगवान्, आप परम पुरुष तथा उनकी शक्तियों के लक्षण कहें, क्योंकि ये दोनों इस प्रकट तथा अप्रकट सृष्टि के कारण हैं।

श्लोक 10: भगवान् ने कहा : तीनों गुणों का अप्रकट शाश्वत संयोग ही प्रकट अवस्था का कारण है और प्रधान कहलाता है। जब यह प्रकट

अवस्था में होता है, तो इसे प्रकृति कहते हैं।

श्लोक 11: पाँच स्थूल तत्त्व, पाँच सूक्ष्म तत्त्व, चार अन्त:करण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ इन चौबीस तत्त्वों का यह समूह प्रधान कहलाता है।

श्लोक 12: पाँच स्थूल तत्त्वों के नाम हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश (शून्य)। सूक्ष्म तत्त्व भी पाँच हैं—गंध, स्वाद, रंग, स्पर्श तथा शब्द (ध्वनि)।

श्लोक 13: ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को मिलाकर इनकी संख्या दस है। ये हैं—श्रवणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय दृश्येन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, वागेन्द्रिय, कार्य करने की इन्द्रियाँ, चलने की इन्द्रियाँ, जननेन्द्रियाँ तथा मलत्याग इन्द्रियाँ।

श्लोक 14: आन्तरिक सूक्ष्म इन्द्रियाँ मन, बुद्धि, अहंकार तथा कलुषित चेतना के रूप में चार प्रकार की जानी जाती हैं। उनके विभिन्न कार्यों के अनुसार ही इनमें भेद किया

जा सकता है क्योंकि ये विभिन्न लक्षणों को बताने वाली हैं।

श्लोक 15: इन सबको सुयोग्य ब्रह्म माना जाता है। इन सबको मिलाने वाला तत्त्व काल है, जिसे पच्चीसवें तत्त्व के रूप में गिना जाता है।

श्लोक 16: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का प्रभाव काल में अनुभव किया जाता है, क्योंकि यह भौतिक प्रकृति के सम्पर्क में आने वाले मोहित आत्मा के अहंकार के कारण मृत्यु का भय उत्पन्न करता है।

श्लोक 17: हे स्वायंभुव-पुत्री, हे माता, जैसा कि मैने बतलाया काल ही श्रीभगवान् है, जिससे उदासीन (समभाव) एवं अप्रकट प्रकृति के गतिमान होने से सृष्टि प्रारम्भ होती है।

श्लोक 18: पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् अपनी शक्तियों का प्रदर्शन करते हुए अपने आपको भीतर से परमात्मा रूप में और बाहर काल-रूप में रखकर विभिन्न तत्त्वों का समन्वयन करते हैं।

श्लोक 19: जब भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से प्रकृति में व्याप्त होते

हैं, तो प्रकृति समग्र विराट बुद्धि को उत्पन्न करती है, जिसे हिरण्मय कहते हैं। यह तब घटित होता है जब प्रकृति बद्धजीवों के गन्तव्यों द्वारा क्षुब्ध की जाती है।

श्लोक 20: इस प्रकार तेजस्वी महत् तत्त्व, जिसके भीतर सारे ब्रह्माण्ड समाये हुए हैं, जो समस्त दृश्य जगत का मूल है और जो प्रलय के समय भी नष्ट नहीं होता, अपनी विविधता प्रकट करके उस अंधकार को निगल जाता है, जिसने प्रलय के समय तेज को ढक लिया था।

श्लोक 21: सतोगुण, जो भगवान् के ज्ञान की स्वच्छ, सौम्य अवस्था है और जो सामान्यत: वासुदेव या चेतना कहलाता है, महत् तत्त्व में प्रकट होता है।

श्लोक 22: महत्-तत्त्व के प्रकट होने के बाद ये वृत्तियाँ एकसाथ प्रकट होती हैं। जिस प्रकार जल पृथ्वी के संसर्ग में आने के पूर्व अपनी स्वाभाविक अवस्था में स्वच्छ, मीठा तथा शान्त रहता है उसी तरह विशुद्ध चेतना के विशिष्ट लक्षण शान्तत्व, स्वच्छत्व तथा अविकारित्व हैं।

श्लोक 23-24: महत् तत्त्व से अहंकार उत्पन्न होता है, जो भगवान् की निजी शक्ति से उद्भूत है। अहंकार में मुख्य रूप से तीन प्रकार की क्रियाशक्तियाँ होती हैं—सत्त्व, रज तथा तम। इन्हीं तीन प्रकार के अहंकार से मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा स्थूल तत्त्व उत्पन्न हुए।

श्लोक 25: स्थूल तत्त्वों का स्रोत, इन्द्रियाँ तथा मन—ये ही तीन प्रकार के अहंकार उनसे अमिन्त हैं, क्योंकि अहंकार ही उनका कारण है। यह संकर्षण के नाम से जाना जाता

है, जो कि एक हजार शिरों वाले साक्षात् भगवान् अनन्त हैं।

श्लोक 26: यह अहंकार कर्ता, करण (साधन) तथा कार्य (प्रभाव) के लक्षणों वाला होता है। सतो, रजो तथा तमो गुणों के द्वारा यह जिस प्रकार प्रभावित होता है उसी के अनुसार यह शान्त, क्रियावान या मन्द लक्षण वाला माना जाता है।

श्लोक 27: सत्त्व के अहंकार से दूसरा विकार आता है। इससे मन उत्पन्न होता है, जिसके संकल्पों

तथा विकल्पों से इच्छा का उदय होता है।

श्लोक 28: जीवात्मा का मन इन्द्रियों के परम अधिष्ठाता अनिरुद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। उसका नील-श्याम शरीर शरद्कालीन कमल के समान है। योगीजन उसे शनै-शनै प्राप्त करते हैं।

श्लोक 29: हे सती, रजोगुणी अहंकार में विकार होने से बुद्धि का जन्म होता है। बुद्धि के कार्य हैं दिखाई पड़ने पर पदार्थों की प्रकृति के

निर्धारण में सहायता करना और इन्द्रियों की सहायता करना।

श्लोक 30: सन्देह, विपरीत ज्ञान, सही ज्ञान, स्मृति तथा निद्रा, ये अपने भिन्न-भिन्न कार्यों से निश्चित किये जाते हैं और ये ही बुद्धि के स्पष्ट लक्षण हैं।

श्लोक 31: रजोगुणी अहंकार से दो प्रकार की इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं—ज्ञानेन्द्रियाँ तथा कर्मेन्द्रियाँ। कर्मेन्द्रियाँ प्राणशक्ति पर और ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि पर आश्रित होती हैं।

श्लोक 32: जब तामसी अहंकार भगवान् की वीर्य (काम) शक्ति से प्रेरित होता है, तो सूक्ष्म शब्द तत्त्व प्रकट होता है और शब्द से आकाश तथा और उससे श्रवणेन्द्रिय उत्पन्न होती हैं।

श्लोक 33: जो लोग विद्वान हैं और वास्तविक ज्ञान से युक्त हैं, वे शब्द की परिभाषा इस प्रकार करते हैं अर्थात् वह जो किसी पदार्थ के विचार (अर्थ) को वहन करता है, ओट में खड़े वक्ता की उपस्थिति को सूचित

करता है और आकाश का सूक्ष्म रूप होता है।

श्लोक 34: समस्त जीवों को उनके बाह्य तथा आन्तरिक अस्तित्व के लिए अवकाश (स्थान) प्रदान करना, जैसे कि प्राणवायु, इन्द्रिय एवं मन का कार्यक्षेत्र—ये आकाश तत्त्व के कार्य तथा लक्षण हैं।

श्लोक 35: ध्वनि उत्पन्न करने वाले आकाश में काल की गति से विकार उत्पन्न होता है और इस तरह स्पर्श तन्मात्र प्रकट होता है। इससे

फिर वायु तथा स्पर्श इन्द्रिय उत्पन्न होती है।

श्लोक 36: कोमलता तथा कठोरता एवं शीतलता तथा उष्णता—ये स्पर्श को बताने वाले लक्षण हैं, जिन्हें वायु के सूक्ष्म रूप में लक्षित किया जाता है।

श्लोक 37: गतियों, मिश्रण, शब्द को पदार्थों तथा अन्य इन्द्रिय बोधों तक पहुँचाने एवं अन्य समस्त इन्द्रियों के समुचित कार्य करते रहने के लिए सुविधाएँ प्रदान कराने में वायु की क्रिया लक्षित होती है।

श्लोक 38: वायु तथा स्पर्श तन्मात्राओं की अन्त:क्रियाओं से मनुष्य को भाग्य के अनुसार विभिन्न रूप दिखते हैं। ऐसे रूपों के विकास के फलस्वरूप अग्नि उत्पन्न हुई और आँखें विविध रंगीन रूपों को देखती हैं।

श्लोक 39: हे माता, रूप के लक्षण आकार-प्रकार, गुण तथा व्यष्टि से जाने जाते हैं। अग्नि का रूप उसके तेज से जाना जाता है।

श्लोक 40: अग्नि अपने प्रकाश के कारण पकाने, पचाने, शीत नष्ट

करने, भाप बनाने की क्षमता के कारण एवं भूख, प्यास, खाने तथा पीने की इच्छा उत्पन्न करने के कारण अनुभव की जाती है।

श्लोक 41: अग्नि तथा दृष्टि की अन्त:क्रिया से दैवी व्यवस्था के अन्तर्गत स्वाद तन्मात्र उत्पन्न होता है। इस स्वाद से जल उत्पन्न होता है और स्वाद ग्रहण करने वाली जीभ भी प्रकट होती है।

श्लोक 42: यद्यपि मूल रूप से स्वाद एक ही है, किन्तु अन्य पदार्थों के संसर्ग से यह कषैला मधुर, तीखा,

कड़वा, खट्टा तथा नमकीन—कई प्रकार का हो जाता है।

श्लोक 43: जल की विशेषताएँ उसके द्वारा अन्य पदार्थों को गीला करने, विभिन्न मिश्रणों के पिण्ड बनाने, तृप्ति लाने, जीवन पालन करने, वस्तुओं को मुलायम बनाने, गर्मी भगाने, जलागारों की निरन्तर पूर्ति करते रहने तथा प्यास बुझाकर तरोताजा बनाने में हैं।

श्लोक 44: स्वाद अनुभूति और जल की अन्त:क्रिया के फलस्वरूप दैवी विधान से गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न

होती है। उससे पृथ्वी तथा घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न होते हैं जिससे हम पृथ्वी की सुगन्धि का बहुविध अनुभव कर सकते हैं।

श्लोक 45: यद्यपि गन्ध एक है, किन्तु सम्बद्ध पदार्थों के अनुपातों के अनुसार अनेक प्रकार की हो जाती है, यथा—मिश्रित, दुर्गंध, सुगन्धित, मृदु, तीव्र, अम्लीय इत्यादि।

श्लोक 46: परब्रह्म के स्वरूपों को आकार प्रदान करके, आवास स्थान बनाकर, जल रखने के पात्र बनाकर पृथ्वी के कार्यों के लक्षणों को

देखा जा सकता है। दूसरे शब्दों में, पृथ्वी समस्त तत्त्वों का आश्रय स्थल है।

श्लोक 47: वह इन्द्रिय जिसका विषय शब्द है श्रवणेन्द्रिय और जिसका विषय स्पर्श है, वह त्वगिन्द्रिय कहलाती है।

श्लोक 48: वह इन्द्रिय जिसका विषय अग्नि का विशेष गुण रूप है, वह नेत्रेन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय का विषय जल का विशेष स्वाद है, वह रसनेन्द्रिय कहलाती है। जिस इन्द्रिय

का विषय पृथ्वी का विशिष्ट गुण गंध है, वह घ्राणेन्द्रिय कही जाती है।

श्लोक 49: चूँकि कारण अपने कार्य में भी विद्यमान रहता है, अत: पहले के लक्षण (गुण) दूसरे में भी देखे जाते हैं। इसीलिए केवल पृथ्वी में ही सारे तत्त्वों की विशिष्टताएँ पाई जाती हैं।

श्लोक 50: जब ये सारे तत्त्व मिले नहीं थे, तो सृष्टि के आदि कारण श्रीभगवान् ने काल, कर्म तथा गुणों के सहित सात विभागों वाली अपनी

समग्र भौतिक शक्ति (महत् तत्त्व) के साथ ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया।

श्लोक 51: भगवान् की उपस्थिति के कारण उत्प्रेरित होने तथा परस्पर मिलने से इन सात तत्त्वों से एक जड़ अण्डा उत्पन्न हुआ जिससे विख्यात विराट-पुरुष प्रकट हुआ।

श्लोक 52: यह अण्डाकार ब्रह्माण्ड भौतिक शक्ति का प्राकट्य कहलाता है। जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकार तथा महत्-तत्त्व की इसकी परतें (स्तर) क्रमश: मोटी होती

जाती हैं। प्रत्येक परत अपने से पूर्ववाली से दसगुनी मोटी होती है और अन्तिम बाह्य परत 'प्रधान' से घिरी हुई है। इस अण्डे के भीतर भगवान् हरि का विराट रूप रहता है, जिनके शरीर के अंग चौदहों लोक हैं।

श्लोक 53: विराट-पुरुष, श्रीभगवान् उस सुनहले अंडे में स्थित हो गये जो जल में पड़ा हुआ था और उन्होंने उसे कई विभागों में बाँट दिया।

श्लोक 54: सर्वप्रथम उनके मुख प्रकट हुआ और फिर वागेन्द्रिय और इसी के साथ अग्नि देव प्रकट हुए जो

इस इन्द्रिय के अधिष्ठाता देव हैं। तब दो नथुने प्रकट हुए और उनमें घ्राणेन्द्रिय तथा प्राण प्रकट हुए।

श्लोक 55: घ्राणेन्द्रिय के बाद उसका अधिष्ठाता वायुदेव प्रकट हुआ। तत्पश्चात् विराट रूप में दो चक्षु और उनमें चक्षु-इन्द्रिय प्रकट हुई। इसके अनन्तर चक्षुओं का अधिष्ठाता सूर्यदेव प्रकट हुआ। फिर उनके दो कान और उनमें कर्णेन्द्रिय तथा दिशाओं के अधिष्ठाता दिग्देवता प्रकट हुए।

श्लोक 56: तब भगवान् के विराट रूप, विराट पुरुष ने अपनी त्वचा प्रकट की और उस पर बाल (रोम), मूँछ तथा दाढ़ी निकल आये। तत्पश्चात् सारी जड़ी-बूटियाँ प्रकट हुईं और तब जननेन्द्रियाँ भी प्रकट हुई।

श्लोक 57: तत्पश्चात् वीर्य (प्रजनन क्षमता) और जल का अधिष्ठाता देव प्रकट हुआ। फिर गुदा और उसकी इन्द्रिय और उसके भी बाद मृत्यु का देवता प्रकट हुआ जिससे सारा ब्रह्माण्ड भयभीत रहता है।

श्लोक 58: तत्पश्चात् भगवान् के विराट रूप के दो हाथ प्रकट हुए और उन्हीं के साथ वस्तुओं को पकड़ने तथा गिराने की शक्ति आई। फिर इन्द्र देव प्रकट हुए। तदनन्तर दो पाँव प्रकट हुए, उन्हीं के साथ चलने-फिरने की क्रिया आई और इसके बाद भगवान् विष्णु प्रकट हुए।

श्लोक 59: विराट शरीर की नाड़ियाँ प्रकट हुईं और तब लाल रक्त-कणिकाएँ या रक्त प्रकट हुआ। इसके पीछे नदियाँ (नाड़ियों की

अधिष्ठात्री) और तब उस शरीर में पेट प्रकट हुआ।

श्लोक 60: तत्पश्चात भूख तथा प्यास की अनुभूतियाँ उत्पन्न हुईं और इनके साथ ही समुद्र का प्राकट्य हुआ। फिर हृदय प्रकट हुआ और हृदय के साथ-साथ मन प्रकट हुआ।

श्लोक 61: मन के बाद चन्द्रमा प्रकट हुआ। फिर बुद्धि और बुद्धि के बाद ब्रह्मा जी प्रकट हुए। तब अहंकार, फिर शिव जी और शिव जी के बाद चेतना तथा चेतना का अधिष्ठाता देव प्रकट हुए।

श्लोक 62: इस तरह जब देवता तथा विभिन्न इन्द्रियों के अधिष्ठाता देव प्रकट हो चुके, तो उन सबों ने अपने-अपने उत्पत्ति स्थान को जगाना चाहा। किन्तु ऐसा न कर सकने के कारण वे विराट-पुरुष को जगाने के उद्देश्य से उनके शरीर में एक-एक करके पुन: प्रविष्ट हो गये।

श्लोक 63: अग्निदेव ने वागेन्द्रिय से उनके मुख में प्रवेश किया, किन्तु विराट-पुरुष उठा नहीं। तब वायुदेव ने घ्राणेन्द्रिय से होकर

उनके नथुनों में प्रवेश किया, तो भी विराट-पुरुष नहीं जागा।

श्लोक 64: तब सूर्यदेव ने चक्षुरिन्द्रिय से विराट-पुरुष की आँखों में प्रवेश किया, तो भी वह उठा नहीं। इसी तरह दिशाओं के अधिष्ठाता देवों ने श्रवणेन्द्रिय से होकर उनके कानों में प्रवेश किया, किन्तु तो भी वह नहीं उठा।

श्लोक 65: त्वचा तथा जड़ी-बूटियों के अधिष्ठाता देवों ने शरीर के रोमों से त्वचा में प्रवेश किया, किन्तु तो भी विराट-पुरुष नहीं उठा। तब

जल के अधिष्ठाता देव ने वीर्य के माध्यम से जननांग में प्रवेश किया, किन्तु विराट-पुरुष नहीं जागा।

श्लोक 66: मृत्यु-देव ने अपान-इन्द्रिय से उनकी गुदा में प्रवेश किया, किन्तु विराट-पुरुष में कोई गति नहीं आई। तब इन्द्रदेव ने हाथों में पकड़कर गिराने की शक्ति के हाथों में प्रवेश किया, किन्तु इतने पर भी विराट-पुरुष उठा नहीं।

श्लोक 67: भगवान् विष्णु ने गति की क्षमता के साथ उनके पाँवों में प्रवेश किया, किन्तु तब भी विराट-

पुरुष ने खड़े होने से इनकार कर दिया। तब नदियों ने रक्त-नाडिय़ों तथा संचरण शक्ति के माध्यम से रक्त में प्रवेश किया, किन्तु तो भी विराट-पुरुष हिला डुला नहीं।

श्लोक 68: सागर ने भूख तथा प्यास के सहित उसके पेट में प्रवेश किया, किन्तु तो भी विराट पुरुष ने उठने से इनकार कर दिया। चन्द्रदेव ने मन के साथ उसके हृदय में प्रवेश किया, किन्तु विराट-पुरुष को जगाया न जा सका।

श्लोक 69: ब्रह्मा भी बुद्धि के साथ उसके हृदय में प्रविष्ट हुए, किन्तु तब भी विराट-पुरुष उठने के लिए राजी न हुआ। रुद्र ने भी अहंकार समेत उसके हृदय में प्रवेश किया, किन्तु तो भी वह टस से मस न हुआ।

श्लोक 70: किन्तु जब चेतना का अधिष्ठाता, अन्त:करण का नियामक, तर्क के साथ हृदय में प्रविष्ठ हुआ तो उसी क्षण विराट-पुरुष कारणार्णव से उठ खड़ा हुआ।

श्लोक 71: जब मनुष्य सोता रहता है, तो उसकी सारी भौतिक

सम्पदा—यथा प्राणशक्ति, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि—उसे उत्प्रेरित नहीं कर सकतीं। वह तभी जागृत हो पाता है जब परमात्मा उसकी सहायता करता है।

श्लोक 72: अत: मनुष्य को समर्पण, वैराग्य तथा एकाग्र भक्ति के माध्यम से प्राप्त आध्यत्मिक ज्ञान में प्रगति के द्वारा इसी शरीर में परमात्मा को विद्यमान समझ कर उसका चिन्तन करना चाहिए यद्यपि वे इससे अलग रहते हैं।

* * * * * * *

श्रीलगुरुदेव